CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

शकटारम्

{मानवप्रताडनाकाव्यम्}

6.2

कविः

महामहोपाध्यायः काश्यपो द्विवेदी

रे वा प्र सा दः

सनातनः

प्रकाशकम्

कालिदाससंस्थानम्

वाराणसी-५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

शकटारम्

{ मानवप्रताडनाकाव्यम् }

महाकविभ्यः श्रीतिनाथझाभट्टेभ्यश्च
प्रश्रयं विधयामि-
रे॰ द्विवेदी
22/3/2001

कविः

महामहोपाध्यायः काश्यपो द्विवेदी

रे वा प्र सा दः

सनातनः

प्रकाशकम्

कालिदाससंस्थानम्

वाराणसी-५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शकटारम् A Poem of 123 verses on the Human-tourcher.

कविः म०म० रेवाप्रसाद द्विवेदी 'सनातन'

अनुवादकः डॉ० सदाशिवकुमार द्विवेदी

प्रकाशनतिथिः २१ सितम्बर, २००० ई०

© सर्वेऽधिकाराः कवितुः सनातनस्य रेवाप्रसादस्य।

प्रकाशकम्
कालिदाससंस्थानम्,
२८ महामनापुरी, वाराणसी–५
दूरभाष : (0542) 316882

मूल्यम् रु० ३५.००

मुद्रक – कम्प्यूटर प्वाइण्ट,
शिवशक्ति काम्पलेक्स, लंका,
वाराणसी – ५

कालिदाससंस्थानस्य प्रकाशनानि :

१. उत्तरसीताचरितम् – महाकाव्यम् १० सर्गाः
२. स्वातन्त्र्यसंभवम् – महाकाव्यम् ३३ सर्गाः
३. शकटारम् १२२ पद्यानि
४. मतान्तरम् १११ पद्यानि
५. शतपत्रम् ११६ पद्यानि
६. प्रमथः ९ काव्यानि
७. शरभङ्गम् १०८ पद्यानि
८. शिवमहिम्नःस्तोत्रम् संशोधितमूल, अनुवाद
९. सत्यनारायणव्रतकथा संशोधितमूल, अनुवाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वस्ति

अभिनवजगती – भाषा –
संभाषाढ्यं सनातनप्रोक्तम् ।
शकटाराख्यं भूयात्
काव्यमिदं प्रीतिमालतीकुसुमम् ।।

२१.९.२००० रेवाप्रसादस्य द्विवेदिनः
सनातनस्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुरोवाक्

नन्दैः स्वकीयो मन्त्री शकटारः केनापि हेतुना स—दारस्नुषा—पुत्रो नितान्तमेव मन्दवाते तमोनिबिडे च भूमिगर्त्ते निवेशितः। छिद्रेणैव दीयमानैः प्रतिव्यक्ति पञ्चभिरेव चणकैर्म्रियमाणा एते प्रतिशोधाय धृतसंकल्पाः सर्वेषां स्वं स्वं चणकपञ्चकं पित्रे शकटाराय एव ददति। सोऽपि प्राणॉस्त्यजतोऽपि पुत्रादीन् पूतिगन्धॉश्च तदीयान् देहान् सदशननिर्घर्षणं दर्शं दर्शं विदारितवितर्द्दिकः श्वसन्नेव गर्त्तगर्भाद् बहिरेति। बहिरायान्तमिमं भीषणाकृतिं वीक्ष्य भूमिरंजते, दिशः प्रकम्पन्ते, द्यौश्च पिपतिषति। अत्र यो मानवस्य मानसिकः संतापातिशयः स एव भगवतो मृत्युञ्जयस्य कालनाम्नो महाकालेश्वरस्य श्मशानभस्मोद्धूलनारार्तिक्यम्। प्रसीदतुतरामेतेन काव्यबन्धेन भगवती वाग्देवतेति निवेद्य —

पितरौ प्रणिपत्य सादरं समुदाराशयमग्रजं च मे।
शकटारमिदं प्रकाशये प्रतिपत्तुं मनुजस्य वास्तवम्।।

२१.९.२०००

सदाशिवः
मानदः सचिवः, कालिदाससंस्थानस्य,
वाराणसेयस्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शकटारम्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ श्रीः ॥

सनातनकवि-श्रीरेवाप्रसादद्विवेदि-विरचितं

शकटारम्

शकटार उदित्वरोऽद्य गर्त्तात्
प्रविभिद्यावनिमीक्ष्यते कराल:,
करयोरिह रिक्ततैव, किन्तु
भयमस्मात् समुदेति भैरवास्यात्॥ १ ॥

यह देखिए शकटार भूमि को फाड़कर गड्ढे से निकलता दिखाई दे रहा है आज। यह कितना कराल है। इसके दोनों हाथ, हैं तो खाली, पर इससे लग रहा है डर, क्योंकि इसका चेहरा बड़ा ही डरावना है॥ १॥

मलिनं रजसा ललाटपट्टं
भ्रुलते अस्य विधाय नाट्यमञ्चम्,
तनुतो ननु ताण्डवं शिवाभ्यां
प्रदिशन्त्यौ क्षणविश्रमं युगान्ते॥ २ ॥

इसका ललाट पट्ट धूलिधूसरित और मलिन है। इसको बना रखा है नाट्य मंच दोनों भौहों ने। इस पर ये ताण्डव कर रही हैं और शिव तथा शिवा के जोड़े को क्षण भर के लिए प्रलयकर ताण्डव में दे रही है विश्राम॥ २॥

निखिलं धमनीवितानमेतत्
त्वचि वै संवृतिकामवाप्य तन्वीम्,
पृथगस्य विभाति सक्थिशेषे
वपुषि क्षीणतमे क्षुधां प्रकोपात्॥ ३ ॥

इसके शरीर की सभी धमनियाँ चमड़ी के भीतर कुछ-कुछ छिपी हैं, किन्तु वे अलग ही दिखाई दे रही हैं। भूख के प्रबल प्रकोप से यह सूख गया है और इसमें अब अस्थियाँ ही शेष हैं॥ ३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इह वक्षसि वैपुलीवधूटी
नटति स्म प्रथमं स्मिताञ्चिताक्षी,
अधुना तु करालमस्थिजालं
परिवेष्ट्य श्वसिति द्रुमे नु जीर्णे।। ४ ।।

यह इसका विशाल वक्ष, इस पर कभी चेहरे पर स्मित लिए हुए विशालतारूपी सुन्दरी नाटय किया करती थी उस पर इस समय साँस लेता दिखाई दे रहा है अस्थिजाल। यह ऐसा लग रहा है जैसे कोई जीर्ण वृक्ष हो ।। ४।।

यदिदं भुजयोरुरु द्वयं तत्
क्रशिमानं परमं गतं कफोण्यौ,
परिघट्टयते नितम्बसक्थ्नोः
प्रतिशोधारणिकल्पयोर्निदेशात् ।। ५ ।।

इसकी ये जो दो विशाल भुजाएं हैं ये हो तो गई हैं अतीव कृश किन्तु कुहनियाँ रगड़ रहीं हैं चूतड़ की हड्डी पर। ये हड्डियाँ ही है प्रतिशोधरूपी अग्नि के प्राकटय के लिए अरणि।। ५।।

करभूदशकं सरन्ध्रमध्यं
नखरैर्दीर्घमभीषणैः श्मशानम्,
विदधन्नु दिशां दश स्फुरद्भि-
र्भरति क्रूरपिशाचिकाकुटुम्बैः।। ६ ।।

इसकी दसों उँगलियों के बीच बड़े-बड़े रन्ध्र हैं । नाखून इतने बढ़े हुए हैं कि इनसे डर लग रहा है। ये उँगलियाँ दिशाओं के वितान को श्मशान में बदल रही हैं क्रूर पिशाचियों के गिरोहों से भर भरकर ।। ६।।

इह वृश्चिकपुच्छवंशकोटि-
र्नखशूकैः करभूगतैः सरोषम्,
दशतीव दिशोऽयुतप्रहारा
प्रतिशोधज्वलदग्निहोलकाङ्गी ।। ७ ।।

देखो यहाँ बिच्छुओं के करोड़ों डंक दिशाओं को डँस से रहे हैं। उँगलियों के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाखून बन रहे हैं इनके डंक में काँटे। ये गुस्से से भरे हुए हैं, कर रहे हैं हजारों प्रहार प्रतिशोध की धधकती आग की होली लिए ॥ ७॥

शरदां दशकद्वयं सदारा-
त्मजदारश्चणकान्नपञ्चिकाभिः ,
समतीत्य यमालयं गतेभ्यो
नवनन्दीक्षतजैः स दित्सुरम्भः॥ ८ ॥

दो दशकों की अवधि पत्नी, पुत्र और पुत्रवधुओं के साथ पाँच पाँच चनों से बिता चुका है यह। यह अपने यमपुर जा चुके इन आत्मीयों को जलाञ्जलि देना चाहता है किन्तु नौ नन्दों के रक्त से ॥ ८॥

अयमेव स मानुषः स्वकीयां
दयितां स्वस्य सुताँश्च दृष्टवान् यः,
विशतः क्रमशो यमस्य वक्त्रं
जलबिन्दोरपि रेचितान् वराकः॥ ९ ॥

यही है वह अधन्य मनुष्य जिसने देखा है यम के मुख में क्रमशः प्रवेश करते 'पत्नी और पुत्रों को' जिन्हें पानी की बूँद तक नहीं मिल पाई थी॥ ९॥

अपहस्ततपौरुषो रसाया-
श्चरमे हन्त तले निवेशितात्मा,
श्वसितानि य एषकः पिपर्त्ति
प्रतिशोधाय पुनः प्रकाश आप्ते॥ १० ॥

जिसके पौरुष को तिरस्कृत कर जिसे भूमि के अन्तिम तल में डाल दिया गया था, तथापि जो साँसों को बचाए हुए था, प्रकाश में आते ही प्रतिशोध के लिए॥ १०॥

मृतपुत्रयुगाङ्गपूतिगन्धान् -
अयमुग्रानपि सोढवानिदानीम्,
मनुजोऽप्युपयाति कालकूटा-
नन-फूत्कारित-दंदशूक-रौक्ष्यम् ॥ ११ ॥

यह वही मनुष्य है जिसने सही है मरे पुत्रों की सड़ी लाशों की उग्र दुर्गन्ध और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसीलिए जो मनुष्य होते हुए भी कालकूट से भरे मुख से फुफकारते सर्प जैसा रूक्ष बन बैठा है।। ११ ।।

अयमेव स कोऽपि मानवो यो
दयितान् वीक्ष्य निवेशितान् यमास्ये,
रुधिरेण निजाधरस्य दत्त्वा
सलिलं तेन हि मार्ष्टि लोचने स्वे।। १२ ।।

यह वही मानव है जिसने प्रियजनों को यमराज के मुख में जाते देखा और अपने अधर के रक्त से दी उन्हें जलाञ्जलि, और उसी रक्त से पोंछे अपने नेत्र।। २।।

अयि दीपशिखे! तदा क्व वासीद्
भवती हन्त यदाऽवटान्धकारः,
शकटारमिमं ग्रसिष्णुरासीद्
विकरालत्वमुपेयिवानदोषम् ।। १३ ।।

अयि दीपशिखे! तू उस समय कहाँ थी जब गड्ढे का अन्धकार निर्दोष शकटार को निगलता जा रहा था विकरालता को प्राप्त कर।। १३।।

अथ दीप! शिखे! बभूवथुः किं
न युवां धाम्न्यपि नन्दकस्य सुस्थौ,
अमृतं गरलायतां गसे वा-
ऽप्यमृतायेत जडस्य का नु हानिः।। १४ ।।

और हे दीप! हे शिखे! क्या तुम दोनों दुष्ट नन्द के घर में भी सुस्थ (स्वस्थ) नहीं थे? अमृत जहर बन जाए या जहर अमृत, इससे जड़ की हानि ही क्या?।। १४।।

शकटारमुदित्वरं विभाव्य
किमु मातः पृथिवि! प्रकम्पिताऽसि,
कृतवत्यसि नावधीरणां त्वं
किमु शिल्पस्य परात्परस्य धातुः।। १५ ।।

शकटार को निकलते देख हे पृथिवि! क्यों काँप रही है तू? क्या तूने विधाता के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वोत्तम शिल्प (मनुष्य) की अवज्ञा नहीं की है?।। १५।।

जडिम – क्रशिम – क्षयिष्णुभूय–
ग्लपितां त्वां पृथिवि! स्थिरां विभाव्य!
अहहैष सनातनो निमज्जा–
म्यतटे विस्मितिकालकूटसिन्धौ।। १६ ।।

पृथिवि! तुझमें जड़ता भी है, कृशता भी और क्षयिष्णुता भी। इन सबसे तू पीडित है। इतने पर भी जब देखता हूँ कि तू स्थिर है तो सनातन मैं विस्मय के तटहीन विष–समुद्र में डूब जाया करता हूँ।। १६।।

अयि मातरियं महावराहं
परिणीयाऽपि भवस्यतीव दीना,
यदि वा रदनद्वयेऽदसीये
हहहा मूर्च्छति कुण्ठितत्वमेकम्।। १७ ।।

माता पृथिवि! तूने विवाह किया महावराह से तब भी तू अतीव दीन दिखाई दे रही है। लगता है इस (वराह) की डाढ़ों में कुण्ठितत्व घर कर बैठा है।। १७।।

अयि किं द्रविणस्य दासतायै
नितरामर्पितचेतनाऽसि पृथ्वि!
यदिह त्वयि वैषमी विचित्रा
परितो मूर्च्छितविग्रहा चकास्ति।। १८ ।।

अयि पृथ्वि! तेरी चेतना द्रव्य की दासता में इतनी समर्पित क्यों बनी हुई है कि तेरे ऊपर विषमता अनेक रूपों में फैली हुई है।। १८।।

प्रथमं परिमज्जिता तनुस्ते
प्रलयाब्धावुदधारि केशवेन,
अधुना स हि केशवोऽप्यकारि
न भवत्या न विहायसोऽरविन्दम्।। १९ ।।

पहले तो प्रलय समुद्र में डूबने पर तुझे उबारा था विष्णु ने, किन्तु अब तो तूने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विष्णु को ही डुबा दिया है प्रलय समुद्र में।। १९।।

प्रलयः प्रचयिष्णुरेव नित्यं
प्रतिसन्ध्यं प्रतिदिक्तटि प्रकाशः,
न हि वेपथुरेषकस्त्वदीयः
शकटारान् प्रतिकर्त्तुमद्य शक्तः।। २० ।।

प्रलय तो दिखाई दे रहा है निरन्तर बढ़ता, प्रत्येक सन्ध्या में, प्रत्येक दिक्तट में। तेरा यह कम्पन इस समय उभरते शकटारों का सामना करने में सक्षम नहीं होगा।। २०।।

अभवत् किमु पृथ्वि यत् त्वदीये
तमसा गीर्णतनौ प्रसह्य गर्त्ते,
खननं सकुटुम्बको नरेन्द्रैः
शकटारः प्रतिलम्भितो बभूवे।। २१ ।।

पृथ्वि! उस समय तुझे कैसा लगा था जब तेरे एक तमोनिगीर्ण गर्त्त में तत्कालीन राजाओं ने शकटार को उसके परिवार के साथ जबरन गाड़ दिया था।। २१।।

जननि! त्वयि किं तदाऽऽविरासी-
न्न हि कम्पः शिथिलीकृताङ्गसन्धिः,
त्वयि किं न तदा पपात शम्पा-
शतमस्माद् गगनाद् विवर्त्तमानात्।। २२ ।।

माता! उस समय तुझ में कम्प नहीं आया, ऐसा कम्प जिससे अंगों के सन्धिबन्ध ढीले पड़ जाते हैं। उस समय तुझ पर इसी प्रतिभासित हो रहे आकाश से सैकड़ों बिजलियाँ क्यों नहीं गिरीं?।। २२।।

शकटार इति श्रुतिः श्रुतिं नुः
क्रकचीभूय निकृन्तति द्रुतां यत्,
उचितं यदि तन्नु मातरेतां
क्षपयौचित्यकथां हि यातयामाम्।। २३ ।।

'शकटार' यह शब्द यदि मनुष्य के द्रुत कानों को क्रकच (आरा) बनकर काटता है और यदि यही होना उचित हो तो माँ! इस बासी पुरानी औचित्यकथा को ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समाप्त कर दे।। २३।।

विधिना विदधे न वै शकारो
न ककारो न टकार एव यस्मै,
रभसेन 'रटाकशा'ऽक्षराली
विपरीतं विनिपातिता नु कोपात्।। २४ ।।

विधाता ने जिस (शकटार) के लिए न बनाया 'श', न 'क' और न 'ट' ही। वह गुस्से में था और उसे जल्दी थी। इसलिए उसने वस्तुतः 'रटाकश' अक्षरों के पटल को उलट दिया था।। २४।।

घुण एव पितामहो यदृच्छां
शकटाराकृतिनिर्मितौ श्रयन् यः,
क्रमते स्म विना क्रमं विधौ वा
प्रतिषेधे यदि वा निमीलितात्मा।। २५ ।।

पितामह तो एक घुन था। उसने सहारा लिया यदृच्छा का-'शकटार' इस अक्षर योजना के निर्माण में। उस समय उसे कोई क्रम प्रिय नहीं था न विधान में, न प्रतिषेध में। वस्तुतः उनका अन्तःकरण उस समय निमीलित था।। २५।।

सति विष्णुसुदर्शने सवज्रे
सति पाणौ च वृषाकपेः समर्थे,
अहह त्वयि मानवं स्म भुङ्क्ते
गतलज्जो ननु मानवो हि पृथ्वि!।। २६ ।।

विष्णु के हाथ में सुदर्शन था ही, और इन्द्र के समर्थ भुजदण्डों में वज्र भी, परन्तु माता पृथ्वि! यह कितने दुःख की बात है कि तेरे ऊपर मानव ही निर्लज्ज होकर मानव को ही खाता जा रहा था।। २६।।

अयमेष पदद्वयीचरिष्णु-
र्विषकीटोऽद्मरभूयमाजिहानः ,
पिशिताशनति स्मयेन दूनः
स परं, पश्यति नो नरं, न नारीम्।। २७ ।।

यही है दो पाया विषकीट जिसे भूख लगी है अति भयंकर और गर्व और ईर्ष्या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की चोट से आहत जो भखता चला जा रहा है दूसरों को । यह न यह देखता है कि यह (भक्ष्य) नर है, यह भी नहीं कि वह देखे कि यह नारी है।। २७।।

न पिताऽस्य पिता न वापि माता
ननु माताऽस्य पशुत्वमापितस्य,
द्रविणं हि कडङ्गरत्वमस्मै
करणानां परितर्पणाय धत्ते।। २८ ।।

पशुत्व को प्राप्त इस (मनुष्य) के लिए पिता पिता नहीं और न माता माता। इसके लिए द्रव्य ही भूसा है इसकी इन्द्रियों के संतर्पण के लिए।। २८।।

शकटीं शकटार एष यां वै
श्रयते जर्जरविग्रहां, श्मशानात्,
अपयाति न सा नितान्तमेव
रसवत्याः प्रमुखे प्रकाशमानात्।। २९ ।।

यह अभागा शकटार जर्जर शरीर की जिस शकटी पर आरूढ़ होता है; वह श्मशान से हटती ही नहीं। उस श्मशान से जो है रसोईघर से बिल्कुल सटकर सामने ही खड़ा हुआ।। २९।।

अभितोऽस्य गृहं श्वसंघ एष
प्ररुवन् कर्षति मानुषान् विशेषान्,
परिपुष्यति जाठरोऽस्य वह्निः
शवशेषादिह पातितात् पतद्भिः।। ३० ।।

इस के चहुँओर कुत्तों का यह झुण्ड रो रहा है और खींच रहा है मनुष्य के अंगों को। इसके पेट की आग मुर्दों के टुकड़ों से ही परिपुष्ट होती है। मुर्दों के टुकड़े पक्षिगण आसमान से पटक दिया करते हैं।। ३०।।

कुणपाङ्गविकर्षणैकधीराञ्
शुनकान् कङ्कपतत्रवीजिताङ्गान्,
शकटार उपह्वरेऽभिमन्त्र्य
प्रदिशत्यात्महिताभियोगमन्त्रान् ।। ३१ ।।

अंग खींच खींचकर खाने में इतमीनान के साथ निरत इन कुत्तों पर गिद्धों के पंखों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की हवा हो रही है। इन्हें शकटार एकान्त में आमंत्रित कर, दे रहा है वे मन्त्र जिनसे उनका अपना हित संभव है।। ३१ ।।

न हि तस्य गृहेऽस्ति पाकशाला
न हि तत्रास्ति च कापि पाठशाला,
प्रतिशोध - महाभियोगयात्रा-
रथकारत्वमृते प्रपठ्यमानम्।। ३२ ।।

उस (शकटार) के घर में न तो पाकशाला ही है और न पाठशाला ही। वहाँ तो प्रतिशोध के महाभियोग की यात्रा के लिए अपेक्षित 'रथ' के निर्माण की ही शिक्षा दी जाती है।। ३२।।

ज्वलति क्षितितोऽन्तरिक्षगर्भा-
वधि तस्यास्य विभीषणो हृदग्निः,
शलभत्वमुपैति नात्र भीष्मे
न विराजोऽपि सहस्रमाननानाम्।। ३३ ।।

इस (शकटार) के हृदय की भयंकर अग्नि पृथिवी से अन्तरिक्ष के गर्भ तक धधक रही है। यह इतनी भयंकर है कि इसके भीतर विराट् पुरुष के भी अनन्त मुख शलभ बन रहे हैं।। ३३।।

इह चर्वयते विनापि दन्तान्
स्थविराम्बा चणकान् घुणावलीढान्,
न च तन्मुखरन्ध्रतो निपाति
क्षतजं मक्षिकयाऽपि शक्यभोगम्।। ३४ ।।

देखो इधर! यह बिना दाँत की बूढी माँ घुने चने चबा रही है। इसके मुँह से बह रहा है रक्त। वह ऐसा है कि उस पर मक्खी भी बैठ नहीं पाती।। ३४।।

अपि शुष्कविशीर्णमञ्चलाग्रं
दयिताया: खलु नास्य पुत्रकोऽपि,
प्रतिमुञ्चति चीत्कृतैर्विधातुः
सजलां नेत्रततिं विधातुमीशः।। ३५ ।।

इसकी इस प्रिया के सूखे और विशीर्ण स्तनों को पुत्र चूसता ही जा रहा है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छोड़ना नहीं चाहता और चिक्कारी मारता है। इससे तो विधाता की आँखों में भी आँसू आ सकते हैं।। ३५।।

इह कुट्टिमरन्ध्रसुप्तसर्प-
त्वचि दृष्टीर्निदधाति यावदिन्द्रः,
घृणया खलु तावदन्तरङ्गे
परिघट्टः शतशो वितीर्यतेऽस्य।। ३६ ।।

यहाँ देखो फर्श में छेद है जिसके ऊपर है केंचुली भीतर सो रहे साँप की। इस पर जब कभी दृष्टि पड़ जाती है इन्द्र की तो उसके अन्तःकरण में भी घृणा (दया) की हजारों टक्करें पड़ने लगती हैं।। ३६।।

कुसुमायुधबाणसन्निपातै -
र्मृदुतां किञ्च रुषा विभीषणत्वम्,
गमिते शकटारचित्तकोषे
तनुतो रुद्रविधी अपि प्रहारान्।। ३७ ।।

शकटार के चित्तकोष पर रुद्र और विधाता भी प्रहार पर प्रहार करते जा रहे हैं (क्योंकि उसका यह चित्तकोष) कामशरों की बौछार से मृदु भी है और रोष से अतीव कठोर भी।। ३७।।

न हि चुल्लिकयाऽस्य यामशान्तौ
पचनायेन्धनकाष्ठमप्यवाप्यम् ,
कथया पयसोऽन्धसश्च दूरा-
दपि तस्मै त्विह शिष्यते कथासु।। ३८ ।।

प्रहर बीतने पर जब भोजन बनाना होता है तो इस (शकटार) की चूल्ही को ईंधन तक सुलभ नहीं हो पाता। दूध और अन्न की बात तो उठती ही कहाँ।। ३८।।

पृथिवी सलिलं तनूनपातो-
ऽनिल आकाश इमे क्व कस्य दासाः,
अथ मूर्च्छति मानवोऽपि भूत्वा
शकटारः क्षुधया स विश्वशातः।। ३९ ।।

'पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आसमान' कहाँ हुआ करते हैं किसी के दास।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इतने पर भी यदि शकटार मानव होते हुए भी भूख से मूर्च्छित होना है तो यह सारे संसार का विनाश है।। ३९।।

अपरिग्रहयोगिनामिलायां
समवायोऽतितरां विशालकायः,
विषमामथ सर्वतोऽर्थनीतिं
परिपश्यन्तुतरामरे महान्तः।। ४० ।।

अपरिग्रह-योग के धनी लोगों की पृथिवी पर भीड़ लगी है। इतने पर भी विश्व के बड़े लोगों! देखो इस अर्थनीति को कितनी विषमतापूर्ण है यह।। ४०।।

अयमत्र पिचण्डिलः कषाया-
वृतकायो जठरानलस्य दीप्त्यै,
भिषजः समुपेत्य वारिराशिं
जलदो यद्वदहो भनक्ति कोषम्।। ४१ ।।

देखो, इस गेरुवाधारी को, कितनी बड़ी है इसकी तोंद। इतने पर भी यह भूख में प्रदीप्ति लाने के लिए वैद्यों पर पैसा बरसा रहा है वैसे ही जैसे बादल बरसाता है पानी।। ४१।।

अयमत्र कडारदारपुत्रो-
च्छ्वसितोत्सारितसंविदुन्मदिष्णुः,
शकटार इतस्ततोऽभ्रदृष्टिः
ककुभां पश्यति शून्यमेव कुक्षिम्।। ४२ ।।

यह देखो एक शकटार यह है जिसके पुत्रकलत्र चितकबरे हो गए हैं। उन्हें देख इसकी बुद्धि नष्ट हो गई है और यह उन्माद में आ गया है। यह आकाश में दृष्टि फेंकता है तो इसे सभी दिशाएँ शून्य दिखाई देती हैं।। ४२।।

शकटार उपायवैफलीभि-
र्विमुखं वीक्ष्य हरेः प्रियां प्रयाति,
हरिवेश्म विशालमभ्रलेहि
प्रजहात्येव च तत्र चेतनां स्वाम्।। ४३ ।।

शकटार के सभी उपाय विफल होते जा रहे हैं। उसे स्पष्ट हो गया कि हरि की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रिया लक्ष्मी उससे विमुख है। अतः वह हरि के वेश्म (मन्दिर) जाता है, किन्तु जब देखता है उसके आकाशचुम्बी शृङ्ग और उसकी विशालता को तो अपनी चेतना खो देता है।। ४३।।

स हि पश्यति तत्र शुभ्रशुभ्रै –
र्हिमसांकाश्यसमुद्धुरैर्विहायः ,
विलिखन्तममुष्य शृङ्गसंघैः
कृपणात्मा ननु सन्निवेशमुच्चैः।। ४४ ।।

शकटार देखता है कि उस (मन्दिर) के बर्फ जैसी धवलता लिए शृङ्ग वाला सन्निवेश आकाश के अन्तराल को कुरेद रहा है तो उसके मन में दीनता जाग जाती है।। ४४।।

अथ पश्यत तं नृलोकपाला
अयि सर्वे शकटारमत्र, देहे,
अहहा नहि यस्य रक्तबिन्दुः
श्वसितुं भोज्यकथां विधातुमीष्टे।। ४५ ।।

और हे लोकपालों! देखो तो इस शकटार को। इसके शरीर में रक्त की बची यह अधन्य बूँद साँस लेने के लिए अपेक्षित भोज्य पदार्थ की बात नहीं सोच पाती।। ४५।।

अयमत्र विलेढि चेतनोऽभ्रा –
ण्यशनाया – परिपीडितोऽर्धवस्त्रः,
इदमत्र लिखत्यहो ख-चुम्बि
प्रभुधामाभ्रगणं स्वकेतुपट्टैः।। ४६ ।।

देखो! यहाँ तो यह अर्धनग्न चेतन भूख से परिपीडित होकर बादलों को चाट रहा है और इधर भगवान् का आकाशचुम्बी धाम अपनी पताकाओं से आकाश के नक्षत्रों को छू रहा है।। ४६।।

इदमस्ति विनिर्मितं कुतश्चित्
स्खलनां प्रापितयैव हन्त लक्ष्म्या,
अहहा तदिदं तदीयमन्तः-
करणं केवलमश्मतां हि धत्ते।। ४७ ।।

यह प्रभुधाम (मन्दिर) बनाया भी था किसी भी कारण कहीं से फिसली लक्ष्मी ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही। अहह, उस (लक्ष्मी) का यह अन्तःकरण (मन्दिर) अब केवल पत्थर बनकर रह गया है।। ४७।।

अयि मेरुकुलाङ्कुरा! हिरण्यै:
ककुभामास्यममी विभूषयन्त:,
शृणुतात्रभवन्त आर्यशीला:
शकटारोऽपि वरीवृतीति भूमौ।। ४८ ।।

अरे मेरुपर्वत के वंशधरों, जो तुम सुवर्णों से दिशाओं के मुखों को विभूषित कर रहे हो, सुनो, आप सब आर्यशील हो, सुनो–'भूमि पर शकटार अभी भी विद्यमान है'।।४८।।

शकटारमिमं महीवधूट्या:
सुषुवे यौवनमेव हन्त, न द्यौ:,
जननी धरणी कथं नु तस्मै
हहहा केवलमश्मभूयमाप्ता।। ४९ ।।

इस शकटार को भी पृथिवी–सुन्दरी के यौवन ने ही पैदा किया था, द्युलोक ने नहीं। दुःख है कि माँ होते हुए भी पृथिवी इस (शकटार) के लिए केवल पत्थर बनी हुई है।। ४९।।

अयमस्ति सुतो न सर्पलोक–
स्तनयित्नो: कुहचिद् वृथा चरिष्णो:,
अयमस्ति स नास्ति नास्तिकत्वा–
स्तिकताप्रीतिलता क्व वावृधीति।। ५० ।।

यह (शकटार) यूँ ही इधर उधर भटकने वाले सर्पलोकीय मेघ का पुत्र नहीं। यह है, वह नहीं। नास्तिकता और आस्तिकता की प्रीतिलता कहाँ बढ़ पाती है।। ५०।।

अयमस्ति दिशामुदारतारे
विवरे व्यापि सुधापय: पिपासु:,
यदि चातकतां गतोऽद्य दीना–
महहा वैशसमेव तर्हि शास्तृ।। ५१ ।।

यह एक ऐसा व्यक्ति है जो दिशाओं को बहुत विशाल विवर में अभिव्याप्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुधारूपी पय को पीना चाह रहा है। यदि यह दीन चातक बन जाएगा तो फिर वैशस (घात) ही हो जाएगा शासक।। ५१ ।।

निखिला अपि देवता लसन्त्यो
दृशि मेऽस्यापि वपुष्यहो विभान्ति,
ग्रहराशिरसौ समोऽप्यमुष्य
प्रतिपन्नः प्रविभाति धातुसंघे।। ५२ ।।

मेरी दृष्टि में तो इस पिपासु चातक के शरीर में भी सभी देवगण विद्यमान हैं और इसकी (शरीरगत) धातुओं में सभी ग्रहगण चमक रहे हैं।। ५२।।

किमु तद् यदिहास्ति नो, यदस्ति
त्वयि रे सञ्चयशूर! मानवात्मन्,
वृतिमातनुषे विधानशूकै-
रयि कस्याद्य कृतेऽत्र भूतधात्र्याम्।। ५३ ।।

हे संचयशूर! हे मानव शरीरधारी जीव! वह क्या है जो इसमें नहीं और तुझमें है। तू तो विधानों के काँटों की बागड़ बना रहा है आज इस पृथ्वी पर। अरे यह किसके लिए।। ५३।।

शकटार उवास जीवितोऽपि
ज्वलिते हन्त भुवः कथं नु कुक्षौ,
अयि रेचित एष किन्नु लोकाद्
रसगर्भात् करणैर्युतोऽपि सर्व्वैः।। ५४ ।।

यह शकटार पृथिवी की धधकती कूँख में भी, अचरज की बात है कि जीवित रहा आया। इसकी सभी इन्द्रियाँ सक्रिय हैं, किन्तु समझ में नहीं आता कि इसे क्यों कर दिया गया है रसयुक्त विश्व से दूर।। ५४।।

बलमस्ति यदि त्वयि प्रपुष्टे
प्रभविष्णौ च तदस्ति ते विधानम्,
अबलः कथमेष, पञ्चभूत-
श्वसितोल्लासकथाऽस्ति चेदभिन्ना।। ५५ ।।

'तू यदि पुष्ट शरीर का बलवान् स्वामी है' तो यह तेरा ही बनाया संविधान है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उससे यह (शकटार) अबल कैसे? अरे पञ्चभूतमयी सासों की कथा तो दोनों में एक और अभिन्न ही है।। ५५।।

शकटारमिमं दवानलार्चि-
श्शतकैरावृतमङ्घ्रिपं विदन्तु,
यमिमं प्रविहाय सर्वतोऽमी
पतगा व्योमनि तन्वते प्लुतानि।। ५६ ।।

यह जो शकटार है उसे समझिए दवाग्नि की सैकड़ों लपटों से घिरा वृक्ष, जिसे छोड़कर ये सभी पखेरू आकाश में चहुँओर उड़ गए हैं।। ५६।।

अपि मूत्रति यत्र सारमेयो
ननु तत्राप्युपजायते शिलीन्ध्रम्,
शकटाररलाट - घर्मवारां-
निधयोऽप्या अवकेशिनो लसन्ति।। ५७ ।।

कुत्ते भी जहाँ पेशाब कर देते हैं वहाँ दिखाई देते हैं पैदा होते शिलीन्ध्र = कुकुरमुत्ते। किन्तु शकटार के ललाट के पसीनों की धार भी बाँझ ही है।। ५७।।

अयि पश्यति भिक्षुके ग्रसिष्णु-
र्विमुखत्वेन स कोऽपि नारकीयः,
भविता पिशिताशनस्य सूनु-
र्यदि वा किञ्चन धिक् श्मशानशूलम्।। ५८ ।।

अरे अरे, इस भिक्षुक को टकटकी लगाए देखकर भी जिसे विमुखता ग्रस लेती है वह या तो होता है नरक निवासी और मांसभक्षी राक्षसपुत्र या फिर श्मशान शूल। धिक्कार इसे।। ५८।।

नियतिर्वनिताऽस्ति रक्तधारा-
धर-वीरस्य सदाभिमुख्यशुद्धा,
श्रमवारिपिपासयाऽभिलीढा
न हि सा रज्यति कुत्रचित् पत्र।। ५९ ।।

नियति यदि खून से भरे वीर को चाहती है तो वह प्यासी भी होती है श्रमजन्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पसीने की। अन्यत्र कहीं भी वह अनुरक्त नहीं हुआ करती।। ५९।।

भगवान्, परजन्मकर्मपाको
नियतिर्भाग्यपदाभिधं च वस्तु,
विषमत्वसुताः, सुतो न तेषां
विषमत्वं नयमार्ग एष शुद्धः।। ६० ।।

'भगवान्, जन्मान्तर कर्मविपाक, नियति और 'भाग्य'-शब्द से पुकारी जाने वाली वस्तु' देन है विषमता की, विषमता इनकी देन नहीं। यही नय-मार्ग शुद्ध है।। ६०।।

पशुपक्षिकुले क्व वर्त्ततेऽसौ
परमात्मेश्वरशब्दमुख्यवाच्यः ,
नहि तेषु ततो भयं न भक्ति-
र्नरमात्रस्य स बौद्धिको विवर्त्तः।। ६१ ।।

तुम्हारा यह ईश्वर-शब्द का मुख्य वाच्य परमात्मा पशुओं और पक्षिओं में कहाँ? न इनमें उससे किसी प्रकार का भय न उस पर भक्ति। यह तो मनुष्य बुद्धि का विवर्त्त है (झूठा)।। ६१ ।।

शकटारति चेन्मनुष्यलोको
नव-नन्द-प्रभुतामिमा-मवैमि ,
न हि तां विभवैः परीतगात्री-
मपि शर्वोऽपि सशक्तिकः पिपूर्यात्।। ६२ ।।

मनुष्यलोक यदि शकटार बनता है तो इसे मैं नव नन्दों की प्रभुता मानूँगा और उसे शक्ति से युक्त शिव भी बचा नहीं सकता भले ही यह विभवों से घिरी हो।। ६२।।

असुरा यदि रान्त्यसूनधन्यान्
क्व भवन्त्यद्य सुराः प्रडीनयानाः,
क्षयमस्य विदन्तु रे प्रसुप्ता
भुवनेशाः क्षयमात्मनोऽक्षयिष्णुम्।। ६३ ।।

यदि असुर अपना काम कर रहे हैं अभागे 'असु' प्राणों को 'रा' नष्ट करके, तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'सुर' कहाँ उड़ गए हैं। इस (शकटार) का जो क्षय है, हे प्रसुप्त भुवनेश्वरों! इसे तुम अपना अक्षय क्षय समझो।। ६३।।

कटुतुम्बिकया बिभर्त्तु कामं
परिवारं य इहानवाप्तधान्यः,
अयि धान्यचय! त्वमस्यधन्यः
स तवैवास्ति हि दैवदुर्विपाकः।। ६४ ।।

कड़वी तुम्बी से परिवार का पोषण कर सकता है वह जिसे अन्न सुलभ नहीं। परन्तु हे धान्यगण! तू ही है अधन्य, और वह तेरे दैव का दुर्विपाक है।। ६४।।

यदि वा कटुतुम्बिकाऽप्यदृश्या
भवति स्वैरमिहार्यभूविताने,
शकटारकथा प्रमाणमस्मि-
न्नितिहासे भरतावने! त्वदीये।। ६५ ।।

अथवा वह कटुतुम्बी भी यहाँ अदृश्य हो जाया करती है, जब चाहे तब, क्योंकि यह ठहरा आर्यभूमण्डल। भारतभूमि! तेरे इस इतिहास में प्रमाण है शकटार की कथा।। ६५।।

विपुले नरवक्षसि प्रहारान्
कुरुषे मुष्टिशतैर्नर! त्वमेव,
अयि चुम्बसि किं न तत् स्वकीय-
सजनुर्वक्ष इवात्मघातसक्त!।। ६६ ।।

अरे मनुष्य! मनुष्य के विशाल वक्ष पर सैकड़ो मुक्कों के प्रहार तू ही करता आ रहा है। अरे आत्मघात में लगे मनुष्य! तू उसे अपने सगे भाई के वक्ष की नाँई चूमता क्यों नहीं।। ६६।।

त्वयि भोक्तरि भोगमेघपुष्प-
व्रज एषोऽभ्यपतद् दिवो विशालः,
उदरं न च पूरितं न तेऽदः
किमिवान्यान् परिहर्त्तुमौत्सुकी ते।। ६७ ।।

तू जब भोग करने बैठा तो देख आकाश से बरस पड़ा यह विशाल भोग-जल।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तेरा पेट नहीं भरा हो ऐसा नहीं। तब दूसरों के परिहार की उत्सुकता तुझमें कैसी?।। ६७।।

यमिमं परिहर्त्तुमुत्सुकस्त्वं
प्रकृतप्रत्त-विभूति-भोग-लेशात् ,
स हि तेऽस्थिचयं विपिष्य दित्सेद्
यदि दिग्भ्यो वद कोऽत्र तस्य दोषः।। ६८ ।।

प्रकृति द्वारा प्रदत्त विभूति के तनिक से भोग के लिए भी तू जिस इसे हटाने हेतु उत्सुक है यदि वह तेरी हड्डियाँ पीस कर दिशाओं को देना चाहे तो इसमें दोष किसका।। ६८।।

चिनुषे वृणुषे त्वमात्मघातं
नरलोकाधमजाङ्गल स्वयं हि,
तृणसस्यकृते कुटीरगात्रे
निज एवाद्य दिशस्यहो त्वमग्निम्।। ६९ ।।

हे नरलोक के अधम व्याघ्र! तू तो आत्मघात का चयन और वरण स्वयं ही कर रहा है। तिनकों से बनाई गई अपनी झोपँड़ी में तू स्वयं ही लगा रहा है आग।। ६९।।

स्थगयस्ययि कार्पसेन वह्निं
सिचयान्तेन धगित्यमुं ज्वलन्तम्,
अयि मोघपरिश्रम! त्वदीयं
शरणं नैव भवेत् परः पिताऽपि।। ७० ।।

अरे तू तो धधक रही इस आग को छिपा रहा है कपड़े के अंचल में। अरे वृथा परिश्रम कर रहे व्यक्ति! तेरी रक्षा परम पिता भी नहीं कर सकता।। ७०।।

अयि जाल्म! मृषोद्यमस्त्वदीयः
सहकारानल एष कोद्रवेभ्यः,
किमु रोदिति नैव चुल्लिका ते
कुरुते सा न कथं नु ते विरोधम्।। ७१ ।।

अरे ओ जाल्म! तेरा यह उद्यम निरर्थक है। यह तो कोदों को राँधने के लिए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहकार नामक अतीव सुगन्धित आम की लकड़ी को जलाया जा रहा है। तेरा चूल्हा क्यों नहीं रोता और क्यों नहीं करता वह तेरा विरोध।। ७१ ।।

यदिदं ननु तण्डुलं कथं तत्
प्रविभिद्यैति बहिर्न पाचनीतः,
द्विदलं च कथं न शाकपाकैः
सह विद्रोहमिदं तनोति तुभ्यम्।। ७२ ।।

यह जो चावल है वह बटलोई को फोड़कर क्यों नहीं आ जाता बाहर। और यह दाल भी शाकभाजी के साथ क्यों नहीं करती विद्रोह तेरे लिए।। ७२।।

न भवन्ति कथं च पुण्ड्रकाणां
त्वयि दण्डा निशिताः शराः कथञ्च,
क्षितिज-क्षिति-युग्म-माजिहीते
त्वयि रे मानव! घस्मरत्वमुच्चैः।। ७३ ।।

पौंडे (गन्ने) के ये दण्ड तेरे लिए तीक्ष्ण बाण क्यों नहीं बन जाते और क्यों नहीं बन जाती क्षिति तथा क्षितिज की जोड़ी तेरे लिए भयंकर घस्मर (खब्बू)।। ७३।।

यजमानमिमं कथं न हि त्वां
विनिहन्तीष्टिरियं विनष्टिगर्भा,
न विसृष्टिरियं कथं च सृष्टिं
नरलोकस्य तनोति चित्रकल्पाम्।। ७४ ।।

तू जो यज्ञ कर रहा यजमान है तुझे ही तेरी यह विनाशक इष्टि क्यों नहीं नष्ट कर डालती। और यह जो विसृष्टि (प्रलय) है यह भी क्यों नहीं बना डालती चित्रतुल्य सृष्टि।। ७४।।

अयि भारतभूमिमातरस्यां
त्वयि ये कक्षतृणोलपा लसन्ति,
दववह्निमिमे पुरो निधाय
न हि शाखोटचयं कथं दहन्ति।। ७५ ।।

अरी ओ भारतमाता! तेरे भीतर जो झाड़ी झंखाड़ के ढेर हैं, ये दँवार को आगे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर क्यों नहीं जला डालते शाखोटकों को ।। ७५।। {शाखोटक एक दुष्ट वृक्ष}।

विलसन्ति यदि त्वयि प्रकाण्डा-
न्यभितश्चैत्यदलानि निर्घृणानि,
विनिपात्य तु तानि चिद्वधूटी
मधुवन्यां स्वगतां कथं न सूते।। ७६ ।।

तेरे भीतर जो ये बड़े बड़े चैत्य (चिता पर निर्मित स्मारक) हैं, जिनमें दया का लेश भी नहीं है। तेरी चिद्वधूटी इन्हें गिराकर अपने भी मधु की वन्या का निर्माण क्यों नहीं करना चाहती।। ७६।।

न भवन्ति दरिद्रिता असूनां
मधुकोषा नृषु सञ्चिताः प्रकृत्या,
त इमे स्वगृहं जिजीविषाभि-
र्दयिताभिः परिमण्डयन्ति शश्वत्।। ७७ ।।

प्रकृति ने प्राणों के जो मधुकोष संचित कर रखे हैं उनका स्वभाव ही है क्षीण न होने का। ये सब जिजीविषारूपी दयिताओं से सदैव विभूषित रखते हैं अपना घर।। ७७।।

विशरारुरियं मनुष्यधात्री
प्रसरारुर्भवति स्वयं तदा वै,
प्रतिभां प्रतिपद्य शुद्धिमुग्धां
कवितां कायति चिद् यदात्मदोग्ध्री।। ७८ ।।

जब अपना ही दोहन करने वाली चिति, विशुद्ध प्रतिभा से प्रसूत विशुद्ध कविता का गान करती है तब यह बिखरनेवाली मनुष्यधात्री अपने आप प्रसरारु (फैलने वाली) बन जाती है।। ७८।।

शकटारकथामिमां निशम्य
कृकलासाः शतशो धुवन्ति शीर्षम्,
क्रिमिकीटभुजो न ते रसाला-
नुपसर्पन्ति रसेष्वबद्धभावाः।। ७९ ।।

शकटार की इस कथा को सुनकर सैकड़ों गिरगिट अपने सिर कँपा रहे हैं। अरे ये तो ठहरें क्रिमिकीट को खाने वाले। इनमें रस का कोई प्रेम नहीं, अतः ये रसालों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के पास नहीं जाते।। ७९ ।।

इह कालिय-कृष्णसर्प-जुष्ट-
रविपुत्री-ह्रद-गन्ध-मूर्च्छितानाम्,
वयसां पततां स्वतो वियत्तः
शकटाराय तुलालवोऽभ्युदीयात्।। ८० ।।

शकटार की थोड़ी सी तुलना उन पक्षियों से की जा सकती है जो कालिय नाग से सेवित यमुना जल की गन्ध से मूर्च्छित हो आकाश से खुद ही टपक जाया करते हैं।। ८०।।

न शिखावल एव नापि कश्चित्
सितपक्षो यदि वा प्रभू तदीयौ,
शकटारमिमं समादधीरन्
नृतिभिर्बुद्धिभिराशिषां शतैर्वा।। ८१ ।।

इस शकटार को सान्त्वना न दे सकता मयूर, न हंस और न इनके स्वामी (कार्त्तिकेय तथा ब्रह्मदेव), भले ही ये कितने ही नाचें, कितनी ही बुद्धि दें और दें सैकड़ों आशीर्वाद।। ८१ ।। मयूर करेगा नृत्य, हंस सिखाएगा नीरक्षीरविवेक और कार्त्तिकेय तथा ब्रह्माजी देंगे आशीर्वाद।

शकटारशवे समाजवाद-
व्रतिनो हन्त भवन्ति जागरूकाः,
न तु ते शकटारजाठराग्नि-
ज्वलिते वारिधरायितुं क्रमन्ते।। ८२ ।।

ये जो ढेर सारे समाजवादी हैं ये तब जागते हैं जब शकटार मर चुकता है और बचा रहता है केवल उसका शव। वे शकटार की जलती जठराग्नि पर बादल नहीं बनना चाहते।। ८२।।

अवनिर्भवनान्यशोषिकोष -
प्रतिपन्नोत्तमसौभगानि यान् वै,
विलसन्त्यभितस्त एव वार्त्तां
विदधत्यद्य समाजवाद! किं ते।। ८३ ।।

जो घिरे रहा करते हैं 'भूमि, भवनों और अक्षय कोषों' से हे समाजवाद! क्या तेरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चर्चा वे ही किया करते हैं।। ८३।।

त्वयि ते प्रतियन्ति किं य एते
तव नाम्नार्थपुमर्थमर्ज्जयन्ते,
वद मित्र समाजवाद! धर्म-
स्तव कोऽभूद् रिपुरेव वा सुहृद् वा।। ८४ ।।

मित्र समाजवाद! तुझ पर विश्वास करने वाले ये लोग क्यों 'अर्थ' इकट्ठा कर रहे हैं तेरे नाम पर। मित्र समाजवाद! बोल कि धर्म तेरे लिए क्या था 'शत्रु' या 'सुहृद्'।। ८४।।

अपि शासनसाद् विधाय सर्वं
प्रभवन्तः प्रवदन्तु लोकपालाः,
समता यदि वा समाजवादः
प्रकृतिः किं भवतां शरीरभाजाम्।। ८५ ।।

हे लोकपालों! बतलाओ कि समता या समाजवाद क्या शरीरधारियों का स्वाभाविक गुण है। आप लोग तो शासन कर रहे हैं सब कुछ शासन के हाथों में लेकर।। ८५।।

यदि चेद् विकृतिर्बलैकसाध्या
प्रभुता वः, प्रवदन्तु धन्यधन्याः,
प्रकृतित्वमुपार्जितुं भवद्भ्यो
ननु मार्गः खलु को विहाय धर्मम्।। ८६ ।।

आपकी प्रभुता यदि बल से ही साध्य, अतएव विकृति है तो आप सब धन्य हैं। बतलाइए कि उसे प्रकृति बनाने के लिए आपके पास कौन सा मार्ग है धर्म को छोड़।। ८६।।

शकटारति मानुषे निकाये
यदि धर्मोऽप्यवकेशिवृक्षकुल्यः,
सफलो भविता तदा कृपाणः
श्रितशाणो न तु वाचिकोऽभियोगः।। ८७ ।।

और यदि मनुष्यों के समाज में धर्म भी बाँझ वृक्ष ठहर रहा हो तो सफल होगा शाण पर चढ़ा तेज कृपाण, न कि वाचिक प्रयास।। ८७।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्वगणे शकटारतां विडाला
अथ तत्राखुसुता यदि प्रयान्ति,
प्रबलाऽबल-धर्षणा-भियोगं
तमिमं वक्ति सनातनो न नीतिम्।। ८८ ।।

कुत्तों के झुण्ड में यदि बिडाल और बिडालों के झुण्ड में यदि चूहे बन रहे हों शकटार तो इसे सनातन (कवि और धर्म) प्रबलों द्वारा अबलों के रौंदने की हबिश कहता है, नीति नहीं।। ८८।।

अनुशासनमस्ति मानुषाणां
यदि नो शासनमात्मनैव चीर्णम्
पर-धर्म-कथाभिराम-गाथा -
कविता पन्नगभोगभूत्यभिन्ना।। ८९ ।।

यदि अनुशासन स्वयं के द्वारा स्वयं का शासन नहीं तो फिर दूसरे के धर्मों की बात करना तो सर्पफण की मणि से अभिन्न कोरी कविता है।। ८९।।

शकटारशिरोधिनैव सर्व्वेऽ-
प्यसयो हन्त भवन्ति कृत्तकृत्ताः,
असिहस्त! पलायनं श्रयेथा
न मृतिं मृत्युशती पराबुभूषेत्।। ९० ।।

देखो जब मनुष्य शकटार बन बैठता है तो तलवारें ही कटती चली जाती हैं उसकी गरदन के द्वारा। भला हो तेरा ओ खड्गधारी! भाग जा तू, मौत को मौतें नहीं कर पातीं परास्त, भले ही संख्या में वे सैकड़ों हो।। ९०।।

अनयस्य नयस्य वा तनूजा
उरगाणां पिटका भवन्ति गर्त्ताः,
मनुजस्य कृते न ते निरोधा
मनुजो वै तिलकोत्तमः परायाः।। ९१ ।।

गर्त्त तो सन्तान हुआ करते हैं अनीति के या नीति के। उन गर्त्तों में बसा करते हैं पेट के बल चलने वाले उरग (साँप)। इन {गर्त्तों} में मनुष्य कैद नहीं होता। वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नो 'परा'{म्बारूपी महाशक्ति} का उत्तमोत्तम तिलक हुआ करता है।। ९१ ।।

तिलकं सुभगा-ललाटपट्टे
विलसन्तं क इवात्र मानुषः सन्,
परिमार्जयितुं क्षमेत पद्भ्यां
रजतेनापि विभूषिताङ्घ्रिकाभ्याम्।। ९२ ।।

और जो तिलक किसी सुहागिन के ललाट पर सुशोभित रहता है उसे ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो मनुष्य होते हुए भी पैरों से मिटाए, भले ही वे पैर चाँदी से विभूषित हों।। ९२।।

शकटारशतीमिमानि हंहो
नभसस्तारकमण्डलानि रात्रौ,
दिवसे च खिलीकृताभ्रगर्भा-
ण्ययनानि प्रकिरन्ति निर्विरामम्।। ९३ ।।

शकटारों की इस सैकड़ों की संख्या को बिना रुके फेंकते आ रहे हैं आकाश के असंख्य तारे रात्रि में, और गगनचुम्बी भवन दिन में ।। ९३।।

असकौ युगसंक्षयो नवीनो
यदिमे पाण्डुसुता हि कृष्णमेव,
परिभावयितुं तदङ्गलग्ने
वसने हन्त जरीगृहीषयान्धाः।। ९४ ।।

यह तो एक नया युगाश्चय है, जिसमें ये पाण्डु के पुत्र (पाण्डव लोग) ही चाह रहे हैं नीचा दिखलाना श्रीकृष्ण को। ये श्रीकृष्ण द्वारा पहने वस्त्रों को भी उतरवा लेने हेतु अन्धे हो उठे हैं।। ९४।।

जननीस्तनपायिनाममीषां
कृकलासाग्रजतामिह श्रितानाम्,
जननीशिर एव कन्दुकश्चे-
च्छकटारस्य हविर्भुजे स वातः।। ९५ ।।

माँ का दूध पीकर बड़े हुए ये लोग बन बैठे हैं आज गिरगिट के अग्रज। इनके लिए गेंद बन गया हो यदि माँ का ही सिर तो वह शकटार रूपी आग के लिए हवा है।। ९५।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वद यन्त्रयुगस्य रे द्विपाद!
त्वरितस्त्वं ननु किं नु धाम गन्तुम्,
अमृताशनधाम चेत् कथं त्वं
शकटारं नरकाय दातुमिच्छुः।। ९६ ।।

ओ यन्त्रयुग के द्विपाद! बोल इतनी शीघ्रता के साथ तू जाना कहाँ चाह रहा है? यदि तू जाना चाह रहा हो उस जगह जहाँ खाने के लिए सुलभ होता है अमृत तो ठीक, पर तू शकटार को नरक में क्यों ढकेलना चाह रहा है।। ९६।।

अमृताशनधाम गन्तुमिच्छो!
पदयुग्मेन चरन्नये चतुष्पात्,
पवनाशनधाम्न्यपि त्वदीया
न गतिस्त्वं शकटारमीक्षसे चेत्।। ९७ ।।

अमृताशनों (देवों) के धाम जाने के लिए इच्छुक ओ दो पैरों से चलने वाला चतुष्पद अरे तुझे तो पाताल में भी प्रवेश नहीं मिलेगा, यदि तेरी {कु}दृष्टि शकटार पर हो।। ९७।।

भगवन् भवताऽभ्यधायि यो मां
भजतेऽनन्यतया स साधुरेव,
इति, किन्तु न सोढुमस्मि शक्तः
शकटारीकरणप्रियत्वमीशे ।। ९८ ।।

हे {गीताचार्य} भगवन्! आपने ही {गीता में} कहा है 'वह भी साधु ही माना जाना चाहिए जो मुझे {श्रीकृष्ण को} अनन्य भाव से भजता हो'। किन्तु आपके भीतर जो यह शकटारीकरण की प्रवृत्ति है इसे असमर्थ हूँ मैं सहन करने में ।।९८।। {'अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्, साधुरेव स मन्तव्यः'-श्रीगीता ९.३०}।

अयि धैर्य! कथं नु रोदिषि त्वं
न हि किं रोदनमेव लक्षणं ते,
अयि नेत्रपयःपयोनिधे! त्वं
किमु सूषे पितृसद्म वा श्रियं वा।। ९९ ।।

अरे ओ धैर्य! तू क्यों रो रहा है? क्या रोना ही है तेरा लक्षण, तेरी पहचान। और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे आँसुओं के समुद्र! तू क्या पैदा करता है? श्मशान या श्री।। ९९।।

अयि नेत्रजल! त्वयैव चेन्मे
पितरस्तृप्तिममी व्रजन्त्यधन्यः,
न भवामि चरोऽचरिष्णुभावं
परमेषोऽस्मि वरीतुमात्तगर्धः।। १०० ।।

अरे नेत्रजल (आँसू)! यदि तुझसे ही मेरे ये पितर तृप्ति पाते हों तो ठीक, परन्तु अधन्य मैं तो हूँ गतिशील चर। मैं जड़ता का वरण करने हेतु तनिक भी इच्छुक नहीं।।१००।।

अयि नेत्रजल! त्वया प्रबोधं
भजते चेन्न पतिः श्रियाः स कश्चित् ,
निपताशु तदस्य दुग्धसिन्धौ
भवितासि त्वमु नात्र नैव तक्रम्।। १०१ ।।

अरे नेत्रजल! श्री का कोई पति यदि तुझसे नहीं जागता तो सुन, तू गिर पड़ इस {श्रीपति} के दुग्धसिन्धु में। तू इसमें तक्र सिद्ध नहीं होगा ऐसा नहीं।। १०१।।

अयमत्र पयःपयोनिधौ ते
शकटारो यदि नास्ति तक्रबिन्दुः,
अयि चक्रधर! श्रियां कटाक्षा-
स्त्वयि सस्ये करकोपलीक्रियेरन्।। १०२ ।।

हे विष्णो! तेरे दूध के समुद्र में यदि शकटार तक्रबिन्दु नहीं बन पाता तो हे चक्रधर! सुन, तेरी जो यह श्री है इसके कटाक्षों को बना दे ओला और बरसा दे सस्यरूपी स्वयं के ऊपर।। १०२।।

शकटारदृगम्बुनैव शम्भो-
र्नयनाग्निः प्रलयाग्नितां प्रयाति,
रिपुरक्तमनेन हि प्रमोषं
भजते पाणियुगाद् वृकोदरीयात्।। १०३ ।।

शिव के नेत्र की अग्नि प्रलयाग्नि बन जाया करती है। किससे? शकटार के आँसुओं के सेक से। यही (शकटार) भीमसेन के दोनों हाथ बनता और कर दिया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करता है समाप्त शत्रुरक्त को।। १०३।।

द्रुपदस्य सुता स्वकेशहस्तं
शकटारस्य दृगम्बुनैव सिक्तम्
अपमान–चिताग्नि–मेघपुष्पै
रिपुवक्षोरुधिरैस्तरीतृपीति ।। १०४ ।।

द्रौपदी का शकटार के आँसुओं से सिक्त केशपाश किससे होता है परितृप्त? केवल शत्रुओं की छाती के रक्त से। ये रक्त ही बनते है जलवर्षा अपमानरूपी चिताग्नि को शान्त करने हेतु।। १०४।।

शकटारदृगम्बु विष्णुगुप्तः
स्वशिखायामभिषिच्य पापरीति,
नवनन्दकुशेषु दत्ततक्रः
कृपणां मर्त्यजिजीविषामिलायाम्।। १०५ ।।

विष्णुगुप्त (चाणक्य) अपनी खुली शिखा के ऊपर शकटार के आँसुओं को सींचता और नवनन्दरूपी कुशों की जड़ में मट्ठा डाल डालकर परिपुष्ट किया करता है मर्त्यों की दीन जिजीविषा को भूलोक में।। १०५।।

शकटारदृशां पयो हि रामः
शरवक्त्रेषु निवेश्य रावणारिः,
अपि मारुतिपुच्छगे कृशानौ
रिपुहेमाद्रिभवं तदेव तैलम्।। १०६ ।।

राम रावण का शत्रु। कैसे? अपने बाणों के अग्रभाग में शकटार के नेत्रों का जल सींचकर। और हनुमान् की पूँछ में जो आग लगी थी उसके लिए शत्रुरूपी सुवर्णगिरि से उत्पन्न तैल भी वही (शकटार के नेत्रों का जल ही) था।। १०६।।

वडवा न हि सा यदाननाग्निः
सहते वारिनिधेः पयःप्रपूरान्,
शकटारचितिश्चिताग्निभीष्मा
ननु सा तत्र निलीय चेकिताना।। १०७।।

वडवा वह नहीं जिसके मुख की आग समुद्र के सञ्चित जल को सह लिया करती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चितागि सी भयंकर शकटारचिति है वह (वडवा) जो उसी में छिपकर जागरूक है।।१०७।।

मरुसैकतविष्टरेषु शेते
शुचिदग्धेषु य ऊष्मणां समूहः,
स कथञ्चिदुपाददीत साम्यं
शकटार-प्रतिशोध-कालवह्नेः ।। १०८।।

शकटार के प्रतिशोध की कालाग्नि की कुछ समता किसी प्रकार देखी जा सकती है मरुस्थलों की ग्रीष्मदग्ध बालु की ऊष्मा में।। १०८।।

स हि मानवचेतनाभिधानीं
क्षपयत्यद्य वनीं यदि प्रफुल्लाम्,
अयि संस्कृतिवल्लरि! त्वमेषा
विषपुष्पप्रसवैव बोभवीषि।। १०९ ।।

यदि वह (शकटार) मानवचेतना-नामक प्रफुल्ल वनस्थली को आज नष्ट भ्रष्ट कर रहा है तो हे संस्कृति-लते! तू भी तो आखिर विष-पुष्प ही तो पैदा कर रही है।।१०९।।

प्रतिशोद्धुमिमे न सन्धिबन्धाः
परघातान् मनुजाकृतौ प्रकल्पिताः
सरसीमरसां निदाघदोषात्
सरसां को नु परस्तदा विदध्यात्।। ११० ।।

मनुष्य के शरीर में अवस्थित ये सन्धिबन्ध यदि शत्रु के घात का प्रतिशोध करने हेतु न बनें हों तो फिर निदाघ के दोष से सूखी (अ-रसा) सरसी को दूसरा कौन बना पाएगा सरस (रस=जल से परिपूर्ण)।। ११०।।

धिगियं यदि यातनाग्निदग्धा
चितिकाकोदरवल्लभा बुभुक्षाम्,
क्षपयेत निजप्रसूतिगात्रैर्
भरत! ब्रूहि रसोऽत्र को नु भावी।। १११।।

महामुनि भरत (भ = भाव + र = राग + त = ताल के धनी)! बोलिए कि इस घटना में कौन सा रस होगा जिसमें चितिरूपी सर्पिणी यातनाओं की आग में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जलकर अपनी भूख अपनी ही कूँख से निकले बच्चों से 'बुझाए'।। १११ ।।

क्षितिजोद्भववात! शातनाभि-
र्मधुवन्यां यदि दुर्भगां चिकीर्षुः,
अयि मूढ निहंसि गन्धवाह
इति नाम स्वमसौ स्वयं त्वमेव।। ११२ ।।

क्षितिज से चले हे वात्याचक्र! यदि तू करना चाह रहा है मधुमयी वनी को दुर्भगा, रे मूढ़! तो तू तो मिटाए डाल रहा है अपने से अपना 'गन्धवाह' यह नाम।। ११२।।

न ततस्तत आजिहीर्षयेद्धा
वयसां सन्ततयोऽत्र शुष्यमाणान्,
शकटारशवस्य सन्धिबन्धान्
कुषितान् दन्तनखैः पुनर्विकुर्युः।। ११३ ।।

किन्तु ऐसा न हो कि उन उन पक्षियों की सन्तानें शकटार के सूख रहे शव के अंगों को छीनने की होड़ में चोंच और नाखूनों से छिन्न-भिन्न कर दें, कुछ विकृत तो वे कर ही चुके हैं।। ११३।।

शकटारशवस्य वामपार्श्वे
नवनन्दग्रहपट्टिकां दधद्भिः,
निखिलैरपि भूमिलोकपालैः
क्रियतां हन्त नतानतैः प्रणामः।। ११४ ।।

होना यह चाहिए कि शकटार के शव की बाईं ओर खड़े भूमिलोक के सभी लोकपाल धारण करें नन्दरूपी नव-ग्रह के नाम की पट्टिका और सिर झुकाकर, खेद के साथ करें उसे प्रणाम।। ११४।।

प्रणताविह यः क्षणो न तस्मिन्
विजहीतात्मनिमीलनानि नेत्रम्,
न हरिर्न हरोऽधिदैवतं नुः
शकटारं तु विहाय तत्र काले।। ११५ ।।

इस प्रणाम में जितने क्षण लगें उनमें किसी की भी निमीलित आँखें खुलें न। उस क्षण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनुष्य का भी अधिदेवता न हरि होगा, न हर, केवल शकटार को छोड़॥ ११५॥

जडतैव परन्तु धिक्, समुद्रा-
म्भसि संक्षोभमियर्त्ति शुक्लपक्षे,
भजते कथमन्यथा तमेतं
ज्वरभङ्गो बहुलासु शर्वरीषु॥ ११६ ॥

परन्तु धिक्! समुद्रजल में जड़ (ल)ता ही समाई हुई है। वही शुक्लपक्ष में संक्षोभ धारण कर लेती है। और नहीं तो, कृष्णपक्ष में उसका ज्वार उतर क्यों जाता है॥११६॥ परन्तु

जलधिर्मनुजो न शुक्लपक्षे
प्रशमं याति स, किञ्च कृष्णपक्षे,
समुपस्थित आत्तरोष उच्चै
रसति क्षोभयते दिशश्च रावैः॥ ११७ ॥

मनुष्य जड समुद्र नहीं है। वह तो उल्टे शुक्लपक्ष में शान्त रहता है और कृष्णपक्ष के आते ही उसमें आ जाता है रोष, वह जोर जोर से चिल्लाता है और क्षुभित कर देता है दिशाओं को॥ ११७॥

तिमिरं विनिहत्य पार्थिवानां
रजसां कुक्षिषु संनिविश्य मूर्च्छत्,
समुदेति पुनः श्वसन् स कश्चि-
च्छकटारः शवभस्मतः स्वकीयात्॥ ११८ ॥

तब होता है यह कि शकटार अपने चिताभस्म से पुनः प्रकट होता है, साँस लेता। इसके पूर्व वह पार्थिव धूलि की कूँख में निविष्ट होकर उनमें फैले उन्हीं के अन्धकार को किए हुए रहता है नष्ट॥ ११८॥

इयमेव विडम्बना परन्तु
त्रिषु लोकेषु सरीसरीत्यरुद्धा,
शकटार इतस्तश्च सत्तां
नवनन्दी लभते पुनः स्वकीयाम्॥ ११९॥

परन्तु विडम्बना यह है कि इधर एक ओर रहती है सत्ता शकटार की और उधर उस ओर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नवनन्दों की सत्ता भी रही ही आती है। ऐसा तीनों लोकों में दिखाई दे रहा है।।११९।।

कवितामपि चन्द्रहासकान्तिं
कलयिष्येऽस्मि सनातनर्षिरेषः,
शकटारति चेन्मनुष्यलोके
क्वचिदप्यन्यतमोऽपि कोऽपि देही।। १२० ।।

मैं ठहरा सनातन ऋषि। मैं कविता में भी ला दूँगा चन्द्रहास (तलवार) कान्ति, यदि देखूँगा कि इस मनुष्यलोक में कहीं भी, एक भी, कोई भी देहधारी शकटार बना हुआ है।।१२०।।

अयि मण्डल विंशतिं च पञ्च
शरदो यत् क्षपयाम्बभूव वन्दी,
शकटारकथां नवीचिकीर्षो-
र्ननु सोऽयं नियतेर्नवः कटाक्षः।। १२१ ।।

मित्र मंडल (नेलसन मंडेला) तुमने बन्दी के रूप में बीस और पाँच वर्ष जो बिताए यह तो थी नियति की नियत, जो चाह रही थी शकटार की कथा को करना पुनर्नव।।१२१।।

यदि चेच्छकटारयातनेयं
प्रकृतेरेव गुणत्रयीतिहासः,
प्रलयं प्रतिपालयन्तु सर्वे
न तु सर्गं, ककुभामधीशितारः।। १२२ ।।

हे दिग्पतियों! शकटार की यह यातना यदि त्रिगुणात्मिका प्रकृति की ही लीला है, उसी की विचित्रता का इतिहास है, तो तुम सब प्रतीक्षा करो प्रलय की, सृष्टि की नहीं।।१२२।।

इति महामहोपाध्यायस्य प्राप्तश्रीवाण्यलङ्करणस्य सनातनकवेः काश्यपस्य द्विवेदिनो रेवाप्रसादस्य कृतिः शकटारं नाम।।

इस प्रकार पूर्ण हुई यह 'शकटारं' नामक कृति जिसके रचयिता हैं महामहोपाध्याय 'श्रीवाणी अलङ्करण' से विभूषित सनातनकवि काश्यप द्विवेदी रेवाप्रसाद।

इस प्रकार पूर्ण हुआ 'शकटारं' का डा० सदाशिवद्विवेदी-कृत हिन्दी अनुवाद।

।। ॐ तत् सत्।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शकटारे

श्लोकानुक्रमणिका

अथ दीप	१४	अयि भार	७५	जननि त्व	११
अथ पश्य	४५	अयि मण्ड	१२१	जननीस्त	९५
अनयस्य	९१	अयि मात	१७	जलधिर्म	११७
अनुशास	८९	अयि मेरु	४८	ज्वलति	३३
अपरिग्र	४०	अवनिर्भ	८३	तिमिरं वि	११८
अपहस्ति	१०	असकौ यु	९४	तिलकं सु	९२
अपि मूत्र	५७	असुरा य	६३	त्वयि भोक्त	६७
अपि शास	८५	इदमस्ति	४७	त्वयि ये प्र	८४
अपि शुष्क	३५	इयमेव	११९	द्रुपदस्य	१०४
अभवत् कि	२१	इह कालि	८०	धिगियं य	१११
अभितोऽस्य	३०	इह कुट्टि	३६	न ततस्त	११३
अमृताशन	९७	इह चर्व	३४	न पितास्य	२८
अयमत्र	४१,	इह वक्षसि	४	न भवन्ति	७३,७७
	४२,४६,	इह वृश्चि	७	न शिखा	८१
	१०२	कटुतुम्बि	६४	न हि चुल्लि	३८
अयमस्ति	५०,५१	करभूद	६	न हि तस्य	३२
अयमेव	९,१२	कविताम	१२०	निखिलं ध	३
अयमेष	२७	किमु तद् य	५३	निखिला अ	५२
अयि किं द्र	१८	कुणपाङ्ग	३१	नियतिर्व	५९
अयि जाल्म	७१	कुसुमायु	३७	पशुपक्षि	६१
अयि दीप	१३	क्षितिजो	११२	पृथिवी स	३९
अयि धैर्य	९९	घुण एव	२५	प्रणतावि	११५
अयि नेत्र	१००,	चिनुषे वृ	६९	प्रतिशोद्धु	११०
	१०१	जडतैव	११६	प्रथमं प	१९
अयि पश्य	५८	जडिमक्र	१६	प्रलयः प्र	२०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बलमस्ति	५५	वद यन्त्र	९६	शकटारमु	१५
भगवन् भ	९८	विधिना वि	२४	शकटारश	८२,९३,
भगवान्	६०	विपुले न	६६		११४
मरुत्सैक	१०८	विलसन्ति	७६	शकटारशि	९०
मलिनं र	२	विशरारु	७८	शकटीं श	२९
मृतपुत्र	११	शकटार इ	२३	शरदां द	८
यजमान	७४	शकटार उ	१,४३,	श्वगणे श	८८
यदि चेद्	८६,		५४	सति विष्णु	२६
	१२२	शकटारक	७९	स हि पश्य	४४
यदिदं न	७२	शकटारति	६२,८७	स हि मान	१०९
यदिदं भु	५	शकटारद्व	१०३,	स्थगय	७०
यदिवा क	६५		१०५,		
यमिमं प	६८		१०६		
वडवा न	१०७	शकटारमि	४९,५६		

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi